जनमानस

[कवि की तलस्पर्शी पचास कविताओं का संकलन]

डा० रवीन्द्रकुमार जैन

आचार्य एवं अध्यक्ष, स्नातकोत्तर अध्ययन एवं शोधसंस्थान
दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

प्रथम संस्करण—600 प्रतियां

जुलाई, 1976

6 ८

मूल्य रु. 6.00

मुद्रक : हिन्दी प्रचार प्रेस,
त्यागरायनगर, मद्रास-17

भूमिका—

'जनमानस' मेरी सन्, '65 से अब तक लिखी गयी 60 प्रमुख कविताओं का संकलन है। चौथी, आठवी, पन्द्रहवीं एवं सोलहवीं कविताएँ अवश्य ही सन्, '65 से पूर्व की हैं। मेरा प्रथम काव्य सकलन "तप्तलहर" जीवन एव जगत की प्रखरताओं के अनेक स्तरों को वाणी देता हुआ आज से नौ वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ था। 'तप्तलहर' मे एक ओर आज के वैज्ञानिक, बौद्धिक एव भौतिक-युग की प्रलयकर तपन से झुलसे हुए, अधिकारहीन, वाणीहीन अथ च मृतप्राय व्यक्तिमन की घुटन के अनेक चित्र थे तो दूसरी ओर क्रान्तिकारी सामाजिक उत्थान का आह्वान भी था। मध्यवर्ग की कुण्ठा, विपन्नता और सन्त्रास का भी उक्त सग्रह मे रूपायित किया गया था। आफीसर शाही, पूंजीवाद और राजनीतिक वात्याचक्र मे एक सुशिक्षित, योग्य एव कर्मनिष्ठ व्यक्ति कितना बौना बना दिया गया है, कितना असहाय सिद्ध किया गया है और आज तो उसका अस्तित्व भी असुरक्षित सा होता जा रहा है, आदि स्थितियों के काव्य चित्र उक्त संग्रह मे थे। बहुमुखी अभावों और यातनाओं में पिसकर भी कवि ने जनक्रान्ति को वाणी दी....

हर चरण मेरा उठा है कटकों के बीच में।
प्रति सास मेरी तो पली है, झझटों की कीच में॥
मृत्यु के मुझको निमन्त्रण ही सदा मिलते रहे हैं।
प्राण य मेरे हठीले मौत को दलते रहे हैं॥

पुनश्च—

आज बदलेगे जमाना काष्ठ का पाषाण का।

सत्ता के मद मे डूबकर शोषण और भोगविलास का जीवन जीनेवाले वर्ग के प्रति कवि ने दृढता से कहा—

"ऊँचे आसन पर बैठ न भूले धरती को।

धरती से बढ़कर दुनियाँ में देना कोई भी साथ

नही है।"—

इसी प्रकार 'मैं अन्दर से मरता जाता हूँ' तथा 'चरण कब के थक चुके, पर राह चलता जा रहा हूँ।' आदि कविताओं में मध्यवर्गीय घुटन और त्रास को सशक्त अभिव्यक्ति देने का यत्न किया गया था। निष्कर्ष यह है कि 'तप्तलहर' अपने युग के दुख दर्द का एक सजीव चित्र है और उसमें एक न्यायिक-क्रान्ति के लिए छटपटाहट भी है।

'जनमानस' नवता और प्रखरता में 'तप्तलहर' से आगे है। इसमें वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन की रिक्तता एवं क्षयिष्णुता का अनेकविध आलोडन किया गया है। मानव की बहुमुखी असगतियों के साथ उसके सरचनात्मक व्यक्तित्व को, उसकी निर्णायक और निर्माण कारिणी शक्ति को भी आन्दोलित किया गया है। इस दशक में वैयक्तिक स्तर पर जिस शोषण, अन्याय, अनचाहा समझौता, विवशता और आत्मग्लानि का जितना तीव्र अनुभव मैंने किया है, उतना अपने अब तक के जीवन में कभी नही किया। साधारण न्याय भी कितना दुर्लभ है, यह बात आज मेरे स्वानुभव का विषय है। प्रस्तुत संग्रह मे जीवन

के इस विषपान को भी वाणी देने का यत्न किया गया है। लेकिन अन्तिम न्याय के प्रति सदा मेरी आस्था रही है और वह मुझे प्रायः मिला भी है अतः मेरी वाणी में दृढ़ता और विश्वास भी पाठकों को दृष्टिगोचर होगा ही। इस दशक को मैं यदि कठोर श्रम, साहस और अनवरत संघर्षों का काल कहूँ तो संभवतः उचित होगा। इससे मेरे भाव और चिन्तन को बल ही मिला है।

प्रस्तुत संग्रह में मूलतः वर्तमान जन-जीवन के अनेकविध चित्र हैं। अतीत और भविष्यत् कहीं प्रसंगतया आ गये हैं। भारतीय संस्कृति, अध्यात्म और राष्ट्रीय-चेतना के जागरण को भी रूपायित किया गया है। जीवन का यथार्थ ही सर्वत्र प्रमुख है। हाँ, कुछ कविताओं में अवश्य ही मैंने जीवन के उच्चतम को सस्वर किया है अतः मुझे उपदेष्टा भी समझा जा सकता है। पर वस्तुतः मैंने सहज उच्चतम की ही चर्चा की है, असहज और आयासित या आदर्शात्मक की नहीं। मैं मानता हूँ कि काव्य मनोरंजन का हल्का-सा साधन नहीं है जो मानव की यौन वृत्तियों को उभारता है। काव्य की सहज श्रेष्ठता मानव की महान शक्तियों को, उसकी उच्चता को और सामाजिकता को जागृत और उर्वर करने में है। काव्य मानव का सच्चा मित्र है और सच्चा मित्र कभी अपने मित्र का अधःपतन नहीं चाहता है। काव्य में सौन्दर्य, कल्पना, मांसलता एवं अत्यन्त विचित्र वैयक्तिक अनुभूतियाँ भी हो सकती हैं परन्तु अन्ततः काव्य मानव का सखा है अतः वह उसकी ऊर्ध्वगामिता को उद्घाटित

करेगा ही। 'जनमानस' को भी इसी धरातल से देखने पर प्रबुद्ध पाठक वर्ग को अवश्य सन्ताप होगा।

यह भी स्वीकृत सत्य है कि मानव की समग्र सहजता का चित्रण काव्य मे होता है। अत काव्य को केवल नैतिक-मूल्यों मे बांध देने पर क्या हम उसकी विराटता को पगु नही बना देंगे? मानव सहज वातावरण मे रहकर स्वत अपनी ऊर्जा का अन्वेषण करता है और ऊपर उठता है। काव्य तो इस प्रक्रिया मे प्रेरक का कार्य करता है।

जीवन के प्रखर क्षणो की आन्दोलक-शाब्दिक अभिव्यक्ति कविता है। आज की कविता राग एव रस की अपेक्षा बौद्धिकता, यथार्थ एवं मासल स्वरा से ही अधिक चालित है। यह एक स्वीकृत एव अनुभूत सत्य है कि साहित्य - विशेषत: काव्य जीवन के आन्तरिक रागो और वेगो का स्वच्छ दर्पण है और जीवन सदा अपने युग की विकास शील चेतना से अनुप्राणित होता रहता है। हिन्दी कविता के अद्यप्रभृति सभी युग इस तथ्य के प्रमाण है। किन्तु अतीत और वर्तमान की कविता मे जो मूल अन्तर सम्प्रति प्रतीत हो रहा है वह मानव के लिए—सस्कारी मानव के लिए पर्याप्त टेढा पड रहा है वह उससे तादात्म्य, सामञ्जस्य या मैत्री नही कर पा रहा है। मानव की मूल चेतना एव प्रवृत्ति का बड़ा भाग सस्कार एव प्राप्त वातावरण से ही प्रचालित होता है। अत: परिचित को—आस्वादित मूलभाव को जब वह विभिन्न नये सन्दर्भो मे देखता है तो सहज ही प्रभावित होता है। कलागत नवता को तो वह स्वीकारता

है किन्तु भाव एवं चेतना के विषय में नवता की बात सुनते ही वह विचलित हो उठता है। गत युगों का काव्य प्रायः स्वदेशी, संस्कार जनित एवं परम्परामूलक था। उसमें वैयक्तिकता, प्रखरता, बौद्धिकता एव आन्तरिक विश्लेषण की कमी थी। वैविध्य एव वैचित्र्य के प्रति वह उदासीन था। आज का काव्य स्वदेशी के साथ-साथ विदेशी जन-चेतना से भी प्रभावित है। उसमें गत का नही वर्तमान का प्रकट का, भोग्य का आग्रह है। उसमें अपने वर्तमान क्षण के प्रति, अह के प्रति मासल जीवन के प्रति यथार्थ और बौद्धिकता के प्रति प्रबल झुकाव है। यह युग विज्ञान, बौद्धिकता, जन वादिता, व्यक्ति स्वातन्त्र्य एवं भौतिक चेतना का है। अत. आधुनिक काव्यसमृष्टि मे ये तत्त्व भी पूर्णतया संगुम्फित हैं।

शिल्प के स्तर पर 'जनमानस' की कविताओं में पारम्परिक बिम्बों, नाद-सौन्दर्य और अलंकारों या लच्छेदार भाषा की तलाश करना उचित नही होगा। इसमें तो प्रायः अनुभूतियों को उनके मूल रूप में ही शब्दायित करने का यत्न किया गया है। आज का जीवन पद्य मे नहीं, गद्य में ही सच्ची अभिव्यक्ति पा सकता है। द्विवेदी युग एवं छायावादी युग के अनेक कवियों पर भी इस वास्तविकता का पर्याप्त प्रभाव पड़ा ही है। गद्य को पद्यायित एव मस्तिष्क को हृदयायित करने की असहजता से मैं यथा-सम्भव दूर ही रहा हूँ। काव्य सृजन में पूर्णतया सहज रह पाना तो सभव ही नहीं है; फिर प्रयत्नतः शिल्प की ओर झुकना उचित नहीं है। यह भी अनुभूत

सत्य है कि काव्य की श्रेष्ठता में अभिव्यक्ति कौशल का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। अतः कवि भी अधिकाधिक प्रभावक शैली का अन्वेषण किसी न किसी मात्रा में करता ही है। बस उसे इतना ही ध्यान रखना है कि उक्ति चमत्कार ही काव्य नहीं है। इसी प्रकार कोरी अनुभूति काव्य नहीं है। वह भावों के रंग में रंजित होकर कवि-हिमालय से स्वतः प्रस्फुटित हो उठनेवाली गंगा है।

'जनमानस' में उक्त कसौटी को कहाँ तक अपनाया गया है, इसकी परीक्षा तो काव्य मर्मज्ञ ही करेंगे। यह संकलन प्रत्येक स्तर पर सामान्यजन एवं प्रबुद्ध वर्ग की बहुमुखी व्यथा का काव्यचित्र है। यदि प्रस्तुत संकलन में पाठकों को जनमन की व्यथा की यत्किंचित् भी झलक मिले तो मैं माँ सरस्वती के चरणों में अर्पित इस काव्य-पुष्प को सार्थक मानूँगा।

—रवीन्द्रकुमार जैन

क्रम

1. ज़िन्दगी ··· 1 - 3
2. हर मनकी हर बात ··· 3 - 5
3. किसका वरण करूँ? ··· 6 - 7
4. किन हाथों से बाँधूं राखी? ··· 7 - 10
5. एक पक्षी ··· 11
6. आदर्श बहुत अच्छी चीज़ है ··· 11
7. परम सुखी हैं ··· 12
8. एक ज्ञानमूर्ति ··· 13 - 19
9. स्वच्छ जलप्रवाह ··· 19 - 20
10. मैं एक ऐसी नाव में बैठा हूं ··· 20 - 21
11. एक नाव यात्रियों से खचाखच भरी ··· 21 - 22
12. एक छल्ला ··· 22 - 27
13. आत्महीनता का विष ··· 27 - 29
14. मोटे मज़बूत··· ··· 29 - 30
15. तुम्हारी दुर्बलता से प्यार मुझे ··· 30 - 32
16. मैं इस धरती का लाल ··· 33 - 36
17. दिल से कहूं? ··· 36 - 38
18. एक कटु अनुभूति ··· 38 - 39
19. लघु मानव ··· 40
20. संघर्ष ··· 40
21. भूतों का पहाड़ ··· 41
22. है प्यार मुझे अपने वामन से ··· 41 - 42
23. द्वन्द्वग्रस्त मानव ··· 42
24. एक छूटा हुआ साथ ··· 43 - 46

25. अभी होश में आना बाकी है ... 46 - 47
26. रात कितनी ही लम्बी हो ... 47 - 48
27. गुलाब ... 49 - 50
28. निर्णय के दुराहे पर ... 50 - 51
29. आकाश में अनन्त अवकाश ... 51
30. गाय का दूध ... 51
31. दुर्गम संकटकाल ... 52
32. अनिश्चय ... 52
33. व्यक्तित्व ... 53
34. महानता ... 53 - 54
35. सच्चा जीवन ... 54
36. एक निष्ठता ... 54
37. गाली ... 55
38. कायर मरण ... 55
39. अपूर्ण मानव ... 55
40. आवरण ... 56
41. अन्धत्व ... 56 - 57
42. सह लेते हैं ... 57
43. जय पराजय ... 57 - 58
44. होली ... 58 - 62
45. हे महावीर ... 62 - 64
46. एक प्रश्न : एक उत्तर ... 65
47. कुण्ठाग्रस्त मानव ... 65
48. संस्कृति ... 66
49. राष्ट्रकवि 'दिनकर' की पुण्य स्मृति में ... 66
50. छात्रों की विदाई पर ... 67 - 69

1. ज़िन्दगी

मेरी ज़िन्दगी एक मोड़ों भरा बहाव है।
कभी ऐसा न हुआ कि
किसी पड़ाव तक भी मैंने
निर्मोड़, निर्बाध बह लिया हो।
कभी समाज के ठेकेदारों ने,
तो कभी धर्म के पोपों ने
तो कभी-शिक्षा-संस्थाओं-
छात्रावासों के अधिपति-स्वयम्भू वर्ग ने
तो कभी ज्ञान के सर्वोच्च आसन पर बैठे
किन्तु ज्ञान मे निर्लिप्त, स्वाध्याय से पूर्णतया विरक्त।
—प्राचार्यों ने
तो कभी अर्थहीनता ने
मेरी ज़िन्दगी की स्वतन्त्र, प्रवाहमयी,
ऊष्मायुक्त एवं निश्छल सांसों को
बन्दी बनाया है—
उनकी हर धड़कन पे पहरा बैठाया है—
सामने लौह भित्तियाँ खड़ी की हैं।

* * *

इसमें मेरे जीवन-प्रवाह में अवरोध तो आया है,
उसकी शक्ति क्षीण भी हुई है।
किन्तु, मनोबल अपराजेय रहकर
इन सबको अस्वीकार करता रहा—
करता रहा—
और भस्मावृत अंगार की भांति
दहकता रहा—
दहकता रहा।
कि, किसी न किसी तूफान ने आकर—
इस भस्म को, इन भित्तियों को
उड़ाया है, गिराया है।
तो कभी मोड़ों में रुकते, जूझते
एवं संचित होते जीवन-जल ने
मोड़ों को तोड़ा है।
और अपने लिए खुला मैदान पाया है।

* * *

आज मुझे लगता है कि
यदि मोड़ न आते—
तो मेरी शक्तियों का, आत्मविश्वास का
और ऊर्जा का विस्तार न होता
आज मेरी ज़िन्दगी का प्रवाह या हौसला

3

इन मोड़ों की बदौलत
आस्फालित एवं द्रुतचालित है

*　　　　*

मैं इन मोड़ों में टूट भी सकता था—
लाखों आये दिल टूटते ही हैं।
कब इन मोड़ों के व्यूह मे
इन्सान का जूझना बन्द होगा?
कब होगा नया सवेरा!

2. हर मन की हर बात नहीं पूरी होती है

[1]

धरतीवालों को चन्द्र और तारे
लगते हैं पास पास।
लगते सरिता के तट भी,
मिलने का करते से प्रयास॥
उठता ढलता सूरज भी,
जतलाता पर्वत निज निवास।
मथुरा गोकुल इस जग को,
लगते करते से बात हास॥

पर उम कान्हा से पूछो,
तुम उस राधा मे पूछो।
पूछो उस सिमक सुप्त वीणा से।
(उम प्रयसि मे दीना, हीना, परिक्षीणा से)
कितनी अलंध्य इनकी दूरी होती है,
हर मन की हर बात....

(2)

रे मन! तेरा रोना है व्यर्थ,
विश्व में ऐसा ही होना है।
श्रम तो करते हैं सभी लोग,
सुख का नाता कितनों से होना है।
जलने को जलते सभी दीप,
पर झंझा में कितने डट पाते?
चलने को चलते सभी पथिक,
पर मंजिल कितने पा जाते!
सुख के सावन के लाख मीत,
दु:ख की अंधियारी में छंट जाते।
बस एक अकेले ही हम।
संघर्षों में जीते औ, मर जाते।
पर, हम पर-आंख किसी की कभी नहीं रोती है।
हर मन की....

[3]

यों तो हर मन में इच्छाओं का,
सागर लहराता है;
हर उमड़ी बदली के लिए,
पपीहा कौन नहीं ललचाता है!
मद-मस्त चंदनियाँ चन्द्र देख,
मन किसका नहीं लुभाता है!
पुष्पित, बहुरंगी, बलखाती, बल्लरियाँ
कितने नूतन भाव जगाती हैं!
पर, कुछ ही हो पाते तृप्त —
शेष अलियों को तो तरसाती हैं।
उन अतृप्त, अवसन्न, जड़ित
अलियों का इतिहास किसी ने जाना!
जग ने जीते को पूजा
हारे को कब पहिचाना?
ज़िन्दगी अनेकों की, विफलता भरी अधूरी होती है
हर माँग नहीं सिन्दूरी होती है,
हर प्रीत नहीं अंगूरी होती है।
हर गंध नहीं कस्तूरी होती है।

हर मन की हर बात....

3. किसका वरण करूँ?

अपनी लघुता, स्थिरता, शान्ति, निर्बाधता,
निश्चिन्तता एवं संघर्षहीनता का?
अथच—
धीमे धीमे मरण का वरण करूँ?
संसार में अनजाना और अनपहचाना ही रहूँ?
किसी के संकेतों की पुत्तलिका मात्र रहूँ?
या फिर—
एक अवसर आया है जिसमें अस्थिरता है,
बाधाएँ हैं—
उत्तरदायित्त्व बहुत अधिक है, चारों तरफ़ घिराव है
हर चीज़ अनिश्चित-सी है।
आस पास के सभी साथी डरे डरे से हैं
कल की अनिश्चितता में मरे मरे-से हैं।
इस अवसर में अनेक खामियाँ हैं
पर एक ही गुण है—
कि मुझे एक बृहत्तर जीवन का आधार मिला है।
मैं स्वतन्त्र रहकर कुछ कर सकता हूँ।
सृजन की आकांक्षाएँ भर सकता हूँ
ज्ञान क्षेत्र में नयी दिशाएँ— योजनाएँ।
दे सकता हूँ।

इस नये काम में कभी कभी आत्मसम्मान एवं
नौकरी की रिस्क भी-भयभीत करती ही है
पर, संसार में जिसे कुछ करना हो
और कुछ होना हो—
उसे कुछ रिस्क का आदी होना होगा
संसार का कोई भी बड़ा कार्य किसीने
बिना रिस्क के नहीं किया है।
डर का जीवन
स्थिरता का जीवन
निश्चिन्तता का जीवन
और रिस्कहीन जीवन
मरण का ही पर्याय है
अत: एक लम्बे और घिनौने मरण की अपेक्षा—
छोटे और चमकीले जीवन का वरण करना ही संगत है

4. किन हाथों से बाँधूं राखी?

हत उत्साह, आशाहत मन की,
हास्य लिए वह रुदन छिपाकर;
बढ़ी आ रही पथगती-सी
चीख छिपाकर गाना गाकर ॥ 1 ॥

चिथड़ों में लज्जा ढांपे वह,
बिलख रही पर नाच रही है ;
वह अबला है असहाया है-
मेला सबलों का जांच ही है ॥ 2 ॥
कसक छिपाकर टीस मसलकर,
भीतर मरकर बाहर जीकर ;
हाथ जोड़कर पैर चूमकर,
नाच नाच कर घूम घूम कर ॥ 3 ॥
रिझा रिझाकर, मना मनाकर,
आंचल फैलाकर, भीख माँगकर
प्राण पालती किसी तरह वह,
वेश्याओं के कई स्वांग भर ॥ 4 ॥
वह लज्जा से झुकती है, शरमाती है,
(गौरव को चकनाचूर किये)
शत शत गड़ती-सी जाती है
यह पुरुष जो उसका ठेकेदार बना-
कहता है, वा ख़ूब हसीना जिओ जिओ,
कटि तो तेरी सौ सौ बल तक खा जाती है ॥ 5 ॥
है आज रूप की हाट लगी,
दिलवालों की भी कमी नहीं ;
वे एक अदा पर मर सकते,

घर आसमान में कर सकते
वे उसके एक अनुग्रह पर,
हैं प्राण निछावर कर सकते ॥ 6 ॥
हैं खड़े एक से एक भव्य
उसका उद्धार कराने को
दे विधवा श्रम में प्रवेश
उसको भव पार लगाने को ॥ 7 ॥
श्रीमन्त सेठ मिल मालिक भी,
उसको निज सचिव बनाने को ;
हैं खड़े आज तत्परता से
बस किसी तरह अपनाने को ॥ 8 ॥
हैं और खड़े ये अतिमानव,
नारी सुधार का व्रत इनका ;
घड़ियाली आँसू आँखों में,
दांतों में इनके है तिनका ॥ 9 ॥
ऐसे ही कितने और खड़े
उसको बस किसी तरह फुसलाने को,
फस जाय जरा तो चुंगल में,
जीते जी नर्क दिखाने को ॥ 10 ॥
तो इसी विषमता निर्ममता में,
पिसी और पिसती जाती है ;

दुर्धर कष्टों में आह न ले,
माता नारी की छाती है ॥ 11 ॥
सहते सहते शत कटु प्रहार,
छाती छलनी बन चुकी आज ;
लुट गयी लाज, मिट गया मान,
कैसा व्यक्ति कैसा समाज ॥ 12 ॥
उसको कैसा रक्षा बन्धन,
कैसी होली दीवाली है ;
परिचित वह मानव नस नस मे
सुन अमृत मिली विष प्याली है ॥ 13 ॥
तो, दानवता का नग्न ताण्ड,
जब देख रही वह सदियों मे :
व्रत शपथ नहीं नर को कुछ भी,
होगा क्या कच्ची लरियों मे ॥ 14 ॥
लद गये दनुजता के दिन अब,
पिसकर देखी मनमानी है ;
नारी यदि क्रीड़ा कन्दुक है
तो, उसका एक रूप भवानी है ॥ 15 ॥
नर की वह पादत्राण नहीं,
है और न इंगित की दासी ;
यदि नर के बिन वह है आधी
तो उसके बिन नर की कुटिया बासी ॥ 16 ॥

5. एक पक्षी

एक पक्षी आकाश की अनन्त ऊँचाईयों में
उड़ता गया, उड़ता गया, उड़ता ही गया।
पर आखिर पंख थक ही गये,
पूर्णतया शक्तिहीन हो ही गये।
वह पक्षी जिस धरा से उड़ा था
अन्ततः उसी धरा पर आ गिरा
और सदा के लिए सो गया।
न जाने क्यों हम धरा को भूलने का दुस्साहस करते हैं

*　　　*　　　*

[6]

आदर्श बहुत अच्छी चीज़ है।
बशर्ते कि यथार्थ की कभी
आवश्यकता ही न पड़े
मगर,
इन्सान हड्डी और मांस का बना है
अर्थात् उसकी सीमाएं हैं, वह देवता नहीं है।
पक्षी कितना ही ऊँचा उड़े
पंख थकने पर
भूख और प्यास लगने पर
उसे धरा पर आना ही पड़ेगा।

7. परम सुखी हैं!

वेदों ने कहा
'सत्यमेव जयते'
यही स्वर
'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या'
उपनिषदों ने गाया।
काव्य ग्रन्थों, नीति ग्रन्थों ने भी
घोषित किया—
'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्'
बापू ने कहा—
सत्य ही भगवान है
बाईबिल का भी बीजमन्त्र है
ट्रुथ इज़ गाड, गाड ट्रुथ।
आज भी अनेक परम ज्ञानी, "महामुख"
सत्य की धुआंधार व्याख्या करते हैं
और आगे भी करेंगे ही
पर आज जगत में सुख उन्हें ही मिला है
सुदृढ़ उन्हीं का किला है
जो इस रास्ते कभी नहीं चले हैं।
और वे ही बहुत पढ़े हैं, बड़े भले हैं

उन्हें ही सिद्धि है ; उनकी ही प्रसिद्धि है ।
लाखों, करोड़ों
जो जन्म से मरण तक
उक्त वाक्यों के ही बलि पशु बनते रहे
और अब भी बन ही रहे हैं
वे सभी, क्षुद्र कीट सदृश
सर्वथा अपरिचित रहकर
प्रतिपल गलकर, ध्वस्त हो गये ।
उन्हें—
धर्म, इतिहास, समाज कभी नहीं जानेगा
उक्त वाक्यों के व्याख्याता—
स्वयं कभी
आचरण की नादानी नहीं करते
अतः सुखी हैं
परम सुखी हैं ।

8. 'एक ज्ञानमूर्ति', 'विद्यावारिधि',

'सर्वोच्च प्राध्यापक', 'आफ़ीसर' 'न्यायनिष्ठ'
नीतिविद् शासक ने—
अपने सहायकों से कहा—

कर्म करो, निःस्वार्थ कर्म
कर्म ही मनुष्य को ऊपर उठाता है
कर्म ही भगवान है
कर्म ही किसी देश की जान है।
अपने समस्त कर्म, मुझमें अर्पित कर दो।
अपनी समस्त भावनाएं मुझे समर्पित कर दो।
मुझे मत देखो
मैं दिमाग से काम करता हूँ।
बैठा हूं कुर्सी पर
या लेटा हूँ पलंग पर
पर, ध्यान लगा है सदा
नई नई योजनाओं पर—
युक्तियों पर।
फिर, मेरा काम ही है
दूसरों से काम लेना —
काम का ढिंढोरा पीटना—
और खुद असलियत में कुछ न करना।
पर मेरा काम भी कम नहीं है।
उसका प्रकार दूसरा है।
प्रतिदिन बीसियों पत्रों, नोटिसों पर,
हस्ताक्षर करना।

प्रतिमास दूर दूर के दो चार दौरे करना,
सहस्रों उत्तर पुस्तिकाएँ देखना, दिखाना
अपने लिए सहायकों से पुस्तकें लिखाना।
मेरे पास समय ही कहाँ है,
अतः आई हुई पचासों पुस्तकों की रिव्यू
भी सहायकों से ही लिखवाता हूँ।
आये दिन पार्टियाँ भी तो अटेण्ड करता हूँ।
मेरे नीचे आदमी काफी हैं
कौन किस मतलब का है
सोचा करता हूँ।
मुझमें शक्ति है बहुत—कहकर
किसी का दिमाग, किसीका पेट
दबोचा करता हूँ।
और, कहीं ये सब मेरी जीवन पद्धति और
दुर्बलताएँ जान न लें—
एक न हो जावें
अतः किसी न किसी बात पर
इन्हें आपस में ही लड़ाया करता हूँ।
इस सब में कितनी शक्ति और योग्यता लगती है—
केवल मैं, या भुक्तभोगी ही जानते हैं।
फिर मैं भी आखिर इन्सान हूँ

दुर्बलताएँ हो सकती हैं मुझमें—
जैसे कि—
तृतीय श्रेणी में यात्रा करूँ
बिल प्रथम श्रेणी का भरूँ।
अपनी घटिया से घटिया पुस्तकें
कोर्स में प्रस्काइब करूँ
दूसरे विश्वविद्यालयों को भी—
इसी पाप से भरूँ।
पुस्तकालय के लिए
पुस्तकें खरीदने में भी—
निज कमीशन के लिए
पूरी सौदेबाज़ी करूँ।
घर पर चाहे घास चरूँ
पर बखान व्यंजनों का करूँ।
दिल से मैं भी बड़ा रोमान्टिक हूँ
पर क्या करूँ
गाय की खाल पहिन कर ही
शिकार करता हूँ।
मेरा व्यवहार बड़ा चुस्त और पैना है,
मज़ाल क्या मुझे कोई पकड़ ले।
'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्"

'स्वार्थं परं भूषणम्।
ये दो ही मेरे जीवन सूत्र हैं।
पर दूसरों को इनसे दूर ही रखता हूँ।
तुम मेरे काम पर ध्यान न दो,
उसे मत देखो
जो कहूँ उसपर चलो,
गुण ग्रहण की आदत डालो;
क्षुद्र दृष्टि को निकालो।
जो जानना चाहते हो मेरी सफलता का रहस्य।
जानना चाहते हो मेरा वर्चस्व।
तो सुनो, मैंने बचपन से ही
प्रत्येक स्तर पर —
शक्ति धारियों की प्राण देकर सेवा की है।
उनसे सम्पर्क बढ़ाया है।
फलतः परीक्षा में प्रथम श्रेणी को पाया है।
और उसीसे आज सर पर मुकुट आया है।
नैतिकता, भावुकता, धर्म और आदर्श
वस्तुतः मंच के लिए हैं, दूसरों के लिए हैं।
ये सब पूर्णतया अर्थहीन हैं—मेरे लिए
बस एक ही महामन्त्र है मेरे पास --
मालिक को रीड करो

अवसर पड़े तो उसकी जूतियाँ भी सर पर धरो
ऐसी मोर्चेबन्दी करो, सेवाओं की, स्वामिभक्ति की
कि सर्वश्रेष्ठ स्वामिभक्त का पुरस्कार
मिल ही जावे।
बस मालिक चला गया परमानन्द है।
अब अपने सहायकों को खूब चूसो, पीसो,
आतंकित करो।
कौन है पूछनेवाला!
और इन बेचारों में दम ही क्या है!
बस अन्तिम, एक बात और जान लो
मैं सर्वग्रासी हूँ।
जो भी मेरे सम्पर्क में,
मेरी छाया में आ जाता है।
उसका पूर्ण व्यक्तित्व शून्य में समा जाता है।
वह छायामात्र [मेरे आदर्शों की, मेरे कृत्यों की]
रह जाता है।
न तन से, न मन से, न वचन से
पनपने देता हूँ किसी को
हर बात के लिए मुहताज़
रखता हूँ सभी को।
मेरे मातहत सभी,

बस मेरी संकेत पुत्तलिकाएँ भर हैं ।
हाँ, उनके परिवारों की भी
यथासम्भव दुर्गति होती रहे
यही मैं चाहता रहता हूं ।
और पीछे में   हम सब एक हैं
हमारा एक परिवार है ।
एक दूसरे के लिए जिएंगे, मरेंगे
कहता ही रहता हूं ।
मैं रोम के नीरू का
जर्मनी के हिटलर का
और चीन के चाउ का
पुञ्जीभूत बृहत-पिण्ड हूं ।

9. स्वच्छ जल प्रवाह

अपनी बहने की उमंग में
एक अनजाने और दूर से
लुभावने लगनेवाले पथ पर—बहने लगा ।
और सहसा उस पथ के पथरीले गर्त में
        ऐसा फँस गया कि
उसका बहना सदा के लिए
        बन्द-सा हो गया है ।

उसकी लहरें सो गयी हैं।
अब न जाने कब, गर्त गलकर टूटेगा!
न जाने कब जल और सिंचन हो
    उसके ऊपर से बहेगा!
अभी तो जल प्रवाह हल्का होता जाता है
और गर्त गहरा और गहरा होता जाता है।

10. मैं एक ऐसी नाव में बैठा हूँ

जिसमें पहले से वर्षों से—
अनेक व्यक्ति बैठे हैं।
यह नाव काफी पुरानी है
इसमें अनेक बड़े-बड़े छेद बैठनेवालों ने ही कर दिये हैं
बाहर से इसे अनेक तूफान भी सता रहे हैं।
और राह भी चट्टानों भरी सरिता में से है।
अतः हर क्षण इसे मौत से टकरा टकरा कर
    बहना पड़ रहा है।
यह नाव शायद ही डूबने से बचे
क्योंकि घोर स्वार्थी,
    क्षुद्र अहं के घिनौने कीड़ों ने ही
    इसे खाना शुरू कर दिया है

जिनकी उम्र इसीमें बीती
वे ही आज इमे डुबो रहे हैं।

11. एक नाव यात्रियों से खचाखच भरी

मुद्दत मे चली जा रही है
प्राय: सभी यात्री मुफ़्तखोर
और, घोर स्वार्थों मे बंधे लोग हैं।
अपनी संकीर्णताओं मे उठकर सोच पाना
या जी पाना इन्हें असम्भव है।
ये प्राय: जीवन जो भी सम्भव था
जी भी चुके हैं।
बस, कुछ थोड़ा-सा और बाकी है।
जन्म मे अब तक के उखड़े हुए ये लोग
आज इस नौका को अपनी बपौती मान बैठे हैं
हर नये व्यक्ति को देखकर ये चौंकते हैं
जैसे कि—
शहर के बाज़ार में गाँव का सांड।
ये हर तरह मे—सीगों के पैने पन मे,
और सम्पूर्ण शरीर की दैत्यता मे,
साथ ही घटिया दिमाग के चुने हुए
जाली और घटिया तर्कों मे

भयभीत करते हैं नवागतों को
तारीफ़ यह है कि ये सभी
आपस में भी एक दूसरे के जानी दुश्मन हैं।
आज ये अपनी नाव में
जगह जगह छिद्र कर रहे हैं
और इस तरह क्षुद्र अहं का
रिक्त गर्त भर रहे हैं
नाव डूब जाय, सदा के लिए नष्ट हो जाए
इन्हें क्या! इनकी बला से।
अरे! ये तो किनारे पर आ ही चुके हैं।
फिर ये भी साथ डूब जांय तो भी क्या
क्योंकि अब इनके जीने और डूब मरने में
कोई अन्तर नहीं है।
इनकी मुराद यही है कि
जैसे भी हो दूसरे न जी सकें।

12. एक छल्ला........

[1]

अनेक तालों को खोलनेवाली अनेक छोटी बड़ी चाबियाँ
इसमें अनुस्यूत हैं।
छल्ला चाबियों को बांधे हुए है

और चाबियों ने छल्ले को घेर रखा है।
इस मेल को हम कुछ भी व्याख्या दें
पर वस्तुत: यह एक अनचाहा समझौता है।
लगता है—
ज़िन्दगी भी एक अनचाही
समस्याओं की चाबियों से
घिरा हुआ छल्ला है।
इस अनचाहे समझौते में, छल्ला घिस-घिस कर टूटने लगा है
कल टूट भी जाएगा।
क्या इस समझौते की जिन्दगी—जीने का....
युग, उसे कुछ पुरस्कार देगा!
नहीं, कुछ नहीं!
बल्कि दुनियाँ उसे
निकम्मा और हीन ही समझेगी।

[2]

अनेक समस्या चाबियों से अनुस्यूत,
मेरा जीवन-छल्ला आज काफ़ी घिस गया है;
बस टूटने ही वाला है।
हर अनचाही चाबी को
यह छल्ला अपने में पिरोता ही गया।

ऊपर से प्रसन्न, पर अन्दर से रोना हो गया
पर आज जब वह
समाप्ति के कगार पर आ पहुँचा है
तो सोचता है : —
मै न मन चाहा जी सका, न मनचाहा मर ही सकूंगा।

3

अनेक छोटी बड़ी चाबियों को स्वयं में
अनुस्यूत करता ही गया।—
बड़े होने के पागलपन में —
आत्यन्तिकी रिक्तता के गर्त में गिरता ही गया।
ऊपर से छन-छन, झुन-झुन
की ध्वनियाँ
मुझमें भरती ही गयीं
पर भीतर से ये चाबियाँ
प्रतिक्षण, मेरी हत्या भी करती ही गयीं।
मै आज जब इति के कगार पर हूं,
जान पाया कि
सदा मेरे साथ रहकर भी
ये चाबियाँ एक पल के लिए भी मेरे साथ न थीं।
....आज हुआ भी यही....

जब घिसते घिसते मै टूट ही गया
तो सभी चाबियाँ अविलम्ब
दूसरे नये छल्ने में
खैलों की तरह अनुस्यूत हो गयीं ।

4]

मै खंड-खंड हो धूल में मिलता जाता हूँ
और ये चाबियाँ नये छल्ने के घेरे में
झूमती, वलखाती बड़ी उत्सुकता से
मेरी शवयात्रा देख रही हैं ।
काश ! शक्ति दान और रसदान से पहले ही
मैने इस वास्तविकता का दर्शन कर लिया होता
पर कोरे आदर्श की झोंक मे
और भावुकता के गरुड़ वेग मे आवृत मानव का मन
उस क्षण में - यह शान्त एवं तटस्थ चिन्तन
कहाँ कर पाता है !

5]

पर, यह भी एक वास्तविकता है कि
छल्ला चाबियों के बिना
चाबियां छल्ने के बिना
अकेले और अपूर्ण से लगते हैं ।

दोनों एक दूसरे में अनुस्यूत होकर
सशक्त, सार्थक, सुन्दर और सजीव हो जाते हैं।
यह विवशता का समझौता नहीं; अपितु—
सौमनस्यमय बृहत्तर जीवन की ओर अभियान है।

6

निष्कर्ष यह है—
ज़िन्दगी यह नहीं है कि हमने क्या जिया और कितना जिया !
बल्कि यह कि, हमने जो भी जिया—
उसे किस दृष्टि कोण से जिया !
किस अन्तश्चेतना की ताज़गी से या मुर्दगी से जिया !
क्योंकि, परिस्थितियाँ सदा हमारे वश में नहीं होतीं
पर, एक धारणा, एक दृष्टिकोण के साथ
हर इन्सान हर हालत में जी सकता है।
फलत:,...........आपादमस्तक सुखों से सना इन्द्र
जीवित रहकर भी मुर्दा हो सकता है।
और एक सर्वग्रासी दरिद्रता से ध्वस्तप्राय
सामान्य मानव
पूर्णतया ज़िन्दा लग सकता है।

[7]

दृष्टिकोण कभी परिस्थितियों का कायल नहीं होता

जीवन परिस्थितियों का अनुसर्ता नहीं है
वह एक सजीव अन्त: प्रक्रिया है।
यह न किसी से बंधता है, और न
किसी को स्वयं में बाँधता है।
अत: वह पुराणों का शलाका पुरुष भी है
और जनता का होरी और गोबर भी।

13. आत्महीनता का विष

एक शुष्क, तुङ्ग मरणोन्मुख वृक्ष
सहसा कुछ अतिसमीपी नन्ही नन्ही,
अबोध लतिकाओं को फुसला सका ;
"अरे, तुम कमज़ोर हो, असहाय हो,
साधनहीन हो
तुम्हारे अस्तित्व की रक्षा असम्भव है।
असह्य ऊष्मा मे ग्रीष्म तुम्हें चूस लेगा, दग्धकर देगा
पवन के पर्वतपाती अन्धड़ तुम्हें एक क्षण में उखाड़ फेंकेंगे
मूसलधार एवं उत्पली वर्षाएँ, तुम्हें एक पल में ध्वस्त कर देंगी
सोचो! एक क्षण रुककर सोचो, तुमने अभी जीवन आरम्भ ही
किया है।

अनेक वसन्त तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।
पर, तुम अकेली केवल, मरण का ही वरण कर सकती हो
यदि जीवन के सुख और सुविधाएँ पसन्द हैं
तो आओ मेरी विशाल बाहों में।
इतना ही क्यों मेरे अङ्ग प्रत्यङ्ग में समा जाओ—
आश्रय के द्वार खुले हैं।

*   *   *

अनजान लताएं भयभीत हो उठी थीं
अत: चुपचाप उस वृक्ष के सर्वग्रासी करों में
स्वयं को समर्पित कर दिया।
अत्यल्प समय में ही बस,
वृक्ष की शुष्कता, दुर्बलता, समाप्त हो गयी।
वह पुष्ट, हरा, भरा और यौवन-सम्पन्न हो गया।
पर धीरे धीरे इनका मनोबल, रक्त, कर्मठता
आदि इनसे विदा हो चुके थे।

*   *   *

वृक्ष के लिए भी अब इन सब में
बिल्कुल आकर्षण न था।
अत: उसने इन सबको, झटककर स्वयं से पृथक कर दिया
बस, तत्काल सभी लताएँ, सूखकर समाप्त हो गयीं

क्योंकि, इनकी आत्मनिर्भरता
शून्य पर पहुँच चुकी थी।
और आत्महीनता का विष
इनकी रग रग में फैल चुका था।

[14]

मोटे मज़बूत लोहे के लंगर से बंधी नाव को
एक युग बीत गया है।
लंगर पर अगाध पानी,
हवा और थपेड़ों का
आज तक कोई असर न हुआ;
हज़ार कोशिशें कर करके सभी थक गये।
नाव का स्वभाव सदा बहने का है
और लंगर का रुकने, रोकने का है
आज सहसा एक भयंकर
प्रवाह एवं आंधी ने—
मिलकर डटकर लंगर से युद्ध किया—
और अन्ततः नाव को—
लंगर के साथ बहने की मुक्ति दी।
दोनों कुछ दूर साथ साथ बहे।
पर, लंगर की एक-एक कड़ी

अपनी हर पराजय का
अपने हर पतन का जिम्मेदार
नारी को ही ठहराया है।
और आज भी उसके संस्कार
वैसे ही हैं।

मैंने भी तुम्हें देखा है,
पास से समझा है;
कुछ भी अन्यथा, अप्रकृत
नहीं पाया है।
हो सकता है मेरा मूल्याङ्कन ग़लत हो।
पर, ज़माना सच हो नहीं सकता;
क्योंकि
उसके साथ अभावों की
ईर्ष्या की और अनंत कुण्ठाओं की—
एक अंधी गुफा है।
जो उसे सत्य से प्रकृत से रोकती है।
ज़माने की इस लाचारी पर
तरस आता है बार-बार मुझे।
तुम्हारी दुर्बलता से प्यार मुझे।

16. मैं इस धरती का लाल कि मेरी रग रग में इसकी लाली

यहीं मनुजता ने अपना, आदिम अवतार लिया था
यहीं जगन्माता नारी ने, प्रथम बार शृंगार किया था;
दिव्य प्रेम के शाश्वत अंकुर, इसी धरा पर फूटे,
श्रद्धामनु के अमर प्रेम के, बंधन अभी न छूटे।
यहीं मेनका सरस्वती ने, अपने प्राणाधार चुने थे,
अरे स्वर्ग की त्याग मोहिनी, भू के गीत सुने थे।
देवी बनने में लज्जित थीं, नारी बनकर गौरव पाया,
धन्य धन्य री भारत भूमि, देवों को तूने तरसाया॥
सुरों बीच अब भी चर्चित हैं काशी, मथुरा, वैशाली।
मैं इस धरती का लाल........

[2]

विश्व सभ्यता निर्देशन का, यहीं प्रथम अध्याय खुला था
युग युग मे सड़ती गलती मानवता का, कल्मष यहीं धुला था
चीर समुद्रों की छाती, बहुविश्व विजेता आये यहाँ,
पर्वत मरु थल कर त्रस्त, ध्वस्त, कुछ नर-पशु भी मंडराये यहाँ।
तन के उजले मन के काले, कुछ गगन मार्ग मे धाये यहाँ;
शरणार्थी बनकर आये थे, शासक बनकर इठलाये यहाँ।

तो, जिस ही पत्तल में खाया था, छल मे उसमें ही छेद किया,
जिसके सीने का दूध पिया, वक्षस्थल उसका भेद दिया।
पर, जिस माता की सरम हंसी, अपना सर्वस्व लुटा सकती,
उस ही माता की तनी भ्रकुटि, दुश्मन को धूल चटा सकती।
मुँह फाड़ सिंह के दांत गिने एसा था इसका वनमाली।
में इस धरती........

[3]

यहाँ भरत-नाट्यम् की अमर कला जीवित है।
ऋषियों की पावन ज्ञान अग्नि, अरे, आज भी संदीपित है।
सुभग राम की मर्यादाऐं, बनी आज तक यहाँ अटल हैं,
श्याम सलौने की लीलाएँ, प्राणों का संबल हैं।
बुद्ध, वीर के आदर्शों ने, आज विश्व को नापा
तोपों, बन्दूकों, एटम का, रो रहा सिसक कर आज बुढ़ापा
आज विश्व भर की आँखों का, तारा भारत बना हुआ है।
अरे, गगन के भी तारों का, प्यारा भारत बना हुआ है
हम इसकी संतान, हमारा बाग़ हमी हैं इसके माली।
मैं इस धरती का लाल........

[4]

हो सकता है मेरी धरती, दुनिया के वैभव से पिछड़ी हो
यहाँ सभ्यताओं, विश्वासों की, रोज़ पका करती खिचड़ी हो :

दलबन्दी पर दलबन्दी ने, यहाँ ज़ोर पकड़ा हो,
निर्धनता और निरक्षरता ने, हमें यहाँ जकड़ा हो।
आविष्कारों, हथियारों की, और चमकते बाज़ारों की
हो सकता है यहाँ........कमी हो
पर, ओ दवा बेचनेवालो, पहले तुम अपना कोढ़ सुधारो
फुली हमारी क्या देखोगे, अपना टेंट निहारो।
हम जो कुछ भी हैं भले-बुरे, फिर भी यह देश हमारा है
दुनियाँ के सौ-सौ स्वर्गों मे, इसका लघुकण भी प्यारा है।
अपनी निर्धनता मे ही हमने, दुनियाँ को सौ बार खरीदा,
मिटते-मिटते मिट गये मगर, दिल मे न हुए हम रंजीदा।
हम पर कोई एहसानों की ना फैलाए चादर काली।
मैं इस धरती का लाल........

[5]

आज विश्व के मानचित्र में, भारत का रूप नया होगा।
इसके वीरों की गाथाओं का, स्वर्णिम स्तूप खड़ा होगा।
जनतन्त्र जगत् का महातन्त्र है, जनवाणी सर्वोपरि वाणी,
आज बांगला देश बन गया, इतिहासों की अमर कहानी।
सत्य, अहिंसा और शौर्य का, भारत ने ध्वज फहराया है
आज विश्व के प्राङ्गण में, यह नया सबेरा लाया है
लोकोत्तर आन्तरिक गठन का, आज हिमालय भारत है।

रस भरे रूस की रोली का आज शिवालय भारत है ।
चीनी, अमरीकी कपट छुरी, को भी प्रेमालय भारत है ।
नापाक, पाक के वाशिन्दों को, अब भी पित्रालय भारत है
तो, अब वे धड़क देश के हर घर में, होगी होली औ' दीवाली
इन्दिरा, कोटि वज्रों का बल लेकर, बिजली बनकर अरिक्षय कर—
करती है इसकी रखवाली ।

मैं इस धरती का लाल........

17. दिल से कहूँ ?

एक लम्बी सीमा तक अधीन रहा हूँ ।
अत: पूर्णतया स्वत्व को ध्वस्त कर
तुम्हारे संकेतों की, ध्वनि, प्रतिध्वनि में—
अक्षरश: डूब चुका हूँ ।
एक टाईप हूँ........
नहीं, नहीं
मेरी और मेरों की हर श्वास पर
लटकती तुम्हारी नंगी तलवार ने,
मेरे पौरुष की हर नस को पीस डाला है ।
अत: बस मैं चलता-फिरता धरती का भार सा शवमात्र हूँ

* * *

तुम्हें मैंने उदार चेता, सज्जनोत्तम चरित्र चक्रवर्ती,

विद्यावाचस्पति, न्यायनिष्ठ, देवतात्मा आदि
न जाने क्या, क्या कहा है!
पर यह सब दिल से नहीं, पेट से —
सिर्फ पेट से कहा है।
तुम सर्वग्रासी राक्षसी प्रवृत्तियों के जमघट हो।
पर मुझे तुम सर्वथा मृत न समझना
मैं अन्दर से तुम्हारी असलियत के प्रति
पूर्णतया सजग हूँ।
और पूरी दृढ़ता से जीवित भी
पर, तुम्हें यह सब जताने में, बताने में
अभी समय लगेगा।
नहीं मानते हो, सुनोगे ही?
दिल से कहूँ?
तुम्हारी नीचता बेजोड़ है,
तुम्हारी नस-नस में कोढ़ है;
तुम सर से पैर तक स्वार्थों के पुतले हो।
अन्दर से भरपूर काले, पर ऊपर से उजले हो।
और भी सुन लो
वह लाखों दिलों की मशाल बढ़ती चली आ रही है
कि अंधी रात तुम्हारी,
सूखी लकड़ी सी जली जा रही है।

बदलो अपने आपको
अन्यथा यह मशाल तुम्हें ध्वस्त कर ही देगी
तुम्हारी हर हरकत को पस्त कर ही देगी।

18. एक कटु अनुभूति

कुछ वर्ष पूर्व, असलियत से दूर,
किन्तु पागल उमंग से भरपूर ;
मैंने एक छोटा सा घर बनाना शुरू कर दिया।
घर आधा भी न बन पाया,
कि सब पूंजी समाप्त हो गयी,
उधार पाने के भी सभी आधार समाप्त हो गये।
तभी एक रात पत्नी ने कहा
कल भोजन नहीं बनेगा ;
बच्चों का नाम भी स्कूल से कटेगा ;
गुड्डी की दवा का क्या होगा !
मैंने एक झूठा साहस एकत्र कर कहा—
चिन्ता मत करो, सबेरे सब ठीक हो जाएगा।

* * *

बात उन दिनों कुछ ऐसी हो गयी थी

कि जिन मित्रों या परिचितों से मैं नमस्ते करता था।
वे जान जाते थे कि अब ये रुपये उधार मांगेंगे ...
और वे चट से कतराकर निकल जाते थे।
फिर भी, एक बहुत हमजोली—
अध्यापक मित्र से मैंने कुछ रुपये
चंद दिनों के लिए उधार मांगे और
मुंहमांगा व्याज देने का वचन भी दिया।
उस मित्र ने कृत्रिम शिष्टता दिखाते हुए
पर भीतरी पूरी दृढ़ता के साथ कहा—
'क्षमा कीजिए; दोस्ती में मनीमैटर नहीं आना चाहिए।
मैं न किसी से लेता हूँ और न किसी को उधार देता हूँ।
अरे आप तो सिर्फ दोस्त हैं
मैं अपनी पत्नी और माँ बाप से भी
इस मामले में बेमुरौवत हूँ।
हम सबका एक-एक पैसे का
अलग अलग हिसाब है।
सो वी कन्टीनिउ टु बी फ्रेन्ड्स
दो वी आर पोल्स ए पार्ट
आन दिस प्वाइन्ट।'

19. लघु मानव

अस्तित्त्व की क्षण जिजीविषा, उसकी अहंकामिता
और प्राप्त जीवन के दो घूंटों में
अपार मधु का सागर पी जाने की उत्कट आकांक्षा।
आज नर को सीमित परिसीमित कर चुकी है।
यह भले ही जीवन का अपकर्ष हो
पर वह इसी में अपना स्वर्ग देखना चाहता है।

20. संघर्ष

आज मेरा संघर्ष,
महानता, आदर्श और—
असहजता के विरुद्ध है।
मैं लघुता चाहता हूँ।
अपना नन्हा सा, चहकता अस्तित्त्व चाहता हूँ।
सहजता के चषक में जीभर के मांसल यथार्थ के दो घूंट पीकर
सदा के लिए सो जाना चाहता हूँ।

21. भूतों का पहाड़

कभी धर्म का नैतिक, आध्यात्मिक उपदेश,
कभी पारम्परिक आचरण —
कभी रूढ़ियाँ और संस्कार
तो कभी समाज की प्रतिक्रिया —
के भूतों का पहाड़....
मेरे चिन्तन शिशु को, मेरे निजी कर्म-शिशु को
दबोचे रहता है।
यह जड़ चेतन का संघर्ष चिरन्तन है।
क्या चेतन भी कभी जीतेगा?

22. है प्यार मुझे अपने वामन से

मैं सागर नहीं एक बूंद हूँ।
मैं सूरज नहीं एक किरन हूँ।
मैं युग नहीं एक क्षण हूँ।
मैं पर्वत नहीं एक कण हूँ।
अतः झूठी ऊँचाइयों के स्तूप पर चढ़कर नहीं;
अपनी दो क्षण की प्यारी लघुता की आत्मा में प्रविष्ट होकर
उसे आत्मसात् कर जीना चाहता हूँ।

अय् दुनियाँवालो !
मत खेलो और अधिक मेरे दामन से
है प्यार मुझे अपने दामन मे ।

23. द्वन्द्व ग्रस्त मानव

हर इन्सान मूलतः और अन्ततः,
एक पार्थिव मानव है ;
पर उसकी पार्थिवता मे ही
उसे इस दुनियां में हर चंद दूर रखा जाता है ।
उसकी पार्थिवता को हीन सिद्ध किया जाता है ।
फलत :—
अन्दर से अपनी पार्थिव ज़िन्दगी के लिए बेचैन
और तरसते मानव को,
तथा बाहर से घटाटोप अदर्शों की कारा में
कैद मानव को....
पिसते-पिसते युग बीत गये हैं ।
वह मन चाहा जीवन जी न सका ।
और औरों का चाहा वह बन न सका ।
क्यों कि ऊँचाइयों पर चन्द लोगों की मुद्दती बपौती है ।
यह दूसरी बात है कि वे........
बिल्कुल नकलची, खोखले और घटिया हैं ।

24. एक छूटा हुआ साँड

चन्द हरामखोर, मक्कार, मुसण्डों से दोस्ती है इसकी।
ये मक्कार अपनी कामचोरी,
और हराम खोरी पर पर्दा डालने के लिए,
जय जयकार से, समर्पण से चुप रखते हैं इसे।
इनके अतिरिक्त
और कुछ हल्के, फुल्के बछड़ों के साथ मिलकर,
उनका हमजोली बनने का नाटक रचकर,
उनकी शक्ति का राक्षसी उपयोग करता है यह।
बस जो भी सामने आता है,
दहाड़ता है उसी की ओर,
सींग मारने को दौड़ता है
कोई कितना भी इससे बचे, अपने रास्ते जाय,
यह बस किसी न किसी प्रकार सींग मारेगा ही।
तारीफ़ यह है कि यह, आदमी की शकल में है,
चाहे कोई उच्च कोटि का विद्वान हो—
देशभक्त या राष्ट्रकवि हो।
बस कहीं इसकी सनक पै न चढ़ पाया—
तो इसने भरपूर खबर ली—
संसार भर के दोष उसमें तत्काल सिद्ध कर ही देगा।

खुद—, काम का न काज का दुश्मन अनाज का।
करता कुछ नहीं है, पर ढिंढोरा सदा श्रम का ही पीटता है।
छोटे से छोटा काम भी करने की—इसमें क्षमता नहीं है।
पर, संसार भर के अधिकार चाहता है।
अपार कुण्ठाओं, पतनों, क्षुद्रताओं और
हीनता ग्रन्थियों का शिकार है यह।
बात बात पर अपनी ऐतिहासिक वरिष्ठता का
बखान करता है।
जैसा कि पौराणिक गप्पों में होता है।
हर प्रकाश से, नयी चेतना से,
भेदक विद्वत्ता से, कला से
प्रभावित होने पर
इसका अहं, क्षुद्र अहं
विस्फोटित होकर विद्रोही हो उठता है।
तब यह गालियां देने के ढंग
सोचने में अपनी शक्ति लगाता है;
और पूरे अन्धेपन के साथ
कुछ रटे हुए साम्यवादी नारों का सहस्रनाम गाता है।
इतना धृष्ट और बेशर्म है यह
कि मज़ाल क्या कोई बदल ले इसे।
अपराधों पर अपराध और मूर्खताओं पर मूर्खताएँ

बड़ी शान और रावणी अकड़ से करता है।
इतना चालाक और मक्कार है कि,
अपनी अकर्मण्यता और मूर्खता पर
किसी को सोचने ही नहीं देता।
बस दूसरों में बलात् दोषों का आरोपण करना ही
इसका पेशा हो गया है।
दूसरों को ज़लील करना,
भरपेट झूठी निन्दा करना ;
उन्हें अपमानित करना इसका दैनिक कर्म है।
और फिर स्वयं विधवाओं की भांति
रुदन भी यही शुरू कर देता है।
इर्द गिर्द के सभी लोग इसे,
अति क्षुद्र नज़र आते हैं ;
क्या कहूँ !
अभी तक तो इसके पागलपन का इलाज हुआ नहीं है।
सब बचते ही रहे हैं इससे।
किसी ने इसको छुआ भी नहीं है।
क्या गीता की बात इस पर भी लागू होगी है—

यदा यदा हि धर्मस्य, ग्लानिर्भवति भारत;
अभ्युत्थानमधर्मस्य, तदात्मानं सृजाम्यहम्।
अवश्य ही इसके परलोकार्थ कोई जन्मेगा।

25. अभी होश में आना बाकी है

चन्दन का मुद्दती जतन भी
सांप को न बदल सका;
हज़ार सरिताओं का मधु भी
न जाने कब से अर्पित हो रहा है
पर, सागर का खारापन न निकला सका।
सैकड़ों बारिसें बरसीं,
पर बंजर चमन न हुआ;
फूलों का साथ एक मुद्दत से है,
पर कांटों का दिल नरम न हुआ।
कोशिशें आज भी ज़ारी हैं अहिंसा की, त्याग की
दुश्मन और जड़ के प्रति राग की।
भावुकता, मानवता और अनेक आदर्शों के लिए
हम आज भी मिटे चले जाते हैं।
अन्दर मरकर भी हम

बाहर खुशी के गीत गाते हैं।
ठोकरें बहुत खायी हैं हमने
पर अभी........होश में आना बाकी है।

26. रात कितनी ही लम्बी हो सवेरा हो ही जाता है

मेघ लाख घिरे हों न हटने की, न छटने की कसम खाकर
कि बिजलियों ने भी बस मौत का माहौल
बनाया हो कड़कड़ा कर—
कि मूसलधार वर्षा भी—आयी हो न रुकने की
कसम खाकर।
पर सूरज, सूरज है सदा उगनेवाला
और ये हैं मौसमी चीज़ें
कि जिनका बसेरा उठ ही जाता है
रात कितनी ही........

*　　*　　*

बस बात इतनी ही है कि
वक्त की आंधियों में, तूफानों में
दब ढक कर भी—

सूरज ने अपना हौसला न छोड़ा हो
रास्ता कितना ही लम्बा हो, टेढ़ा हो
फिर भी उसने अपना गति का—
घोड़ा न रोका हो—
न निराश होकर मोड़ा हो।
अरे! जीवन चाहे लाख बरस का न हो
थोड़ा हो, बहुत थोड़ा हो।
पर, उसमें हो चमक, उसमें हो जोश
उसमें हो एक हस्ती के साथ
जीने का संकल्प।
कि वह हरचन्द बाधाओं की भित्तियों से जूझा हो
उसने उन्हें फोड़ा हो
नियति का चक्र बड़ा कितना ही हो,
पर घूमते रहना उसका नियम है।
अतः वह क्षण भी आता है
कि जब चक्र का निचला सिरा भी
ऊपर को उठता है
और उसकी ज़िन्दगी में भी
उजेला हो ही जाता है।

रात कितनी ही लम्बी हो........

27. गुलाब

तुम्हें अपने ही ढंग से फैलते देख,
बागवाँ ने हर फैलाव पर;
कैंची चला दी।
तुममें और उसमें कई बार,
ऐसा ही हुआ;
पर तुम फिर भी गदराये हो—
भरपूर खिले हो।
और अब तो जुल्म तुम्हें महसूस ही नहीं होता।
क्योंकि, आदत हो गयी है।
लगता है, तुम्हारी निजता सो गयी है।
शायद सदा के लिए।
कुछ ऐसी ही, जैसे कि—
नारी के छिदे-भिदे नाक, कान
लम्बे, लम्बे, गुंथे गुंथे बाल और अवगुण्ठन
आज उसकी सुन्दरता और सामाजिक प्रतिष्ठा के विषय
बन गये हैं।
पर, अफसोस तो यह है
कि जो तुम जैसे किसी बागवाँ के
हाथों नहीं बिके हैं

उन्हें तुम हीन और
आउठ आफ डेट समझते हो ।

28. निर्णय के दुराहे पर

अध्यापकी में एक निश्चित जीवन पद्धति है ।
बंधा हुआ वेतन मिलता है ।
कुछ पारम्परिक, स्थिर, रूढ़ विषयों का विवेचन होता है
वर्षों मे यही करता आया है
अत: अध्यापक जागने का अभिनय
करता है पर भीतर मे सोता है ।
उसका सब कुछ पुराना होता है
वह नया कुछ नहीं बोता है ।
एक प्रतिभा संपन्न व्यक्ति भी
अध्यापक बन जाने पर
धीरे-धीरे स्वयं से कुढ़ता है
भीतर भीतर रोता है ।
लाख चाहने पर भी वह
इस पेशे को तलाक नहीं दे पाता है
कोल्हू के बैल की तरह
इसी के इर्द गिर्द चक्कर खाता है ।

उसकी अपार मौलिक ऊर्जा में
धीरे-धीरे संस्कारों की जंग लग जाती है।
और एक क्षण ऐसा आता है
जब वह इन्हीं संस्कारों का
पूरा हिमायती हो जाता है।

29. आकाश में अनन्त अवकाश है

कोई कितना ही उड़े, पर,
बस उड़ना ही रहे।
आकाश किसी को विश्राम नहीं दे सकता।
सागर में अपार और अथाह जल है।
जो जितना चाहे ले ले पर, बस पीने का नाम न ले।

[30]

गाय का दूध क्रेता को मिलता है—
बछड़े को नहीं।
वृक्ष के फल माली को नहीं
मालिक को मिलते हैं
सेवक का काम सेवा है
फल अधिकारी का है।

31. दुर्दम संकट काल

हमारी समग्र क्षमता का परीक्षाकाल है।
यही जीवन का अत्यन्त विरल स्वर्ण क्षण है।
जबकि ज़िन्दगी और मौत में
प्रतिक्षण हज़ारों टक्करें होती हों––
तभी आदमी भरपूर अपनी भीतरी
गहराइययों को देखना है—
और फौलादी निर्णय करता है।
इसी क्षण में नये विचारों और
नयी उद्भावनाओं का व्यक्ति में जन्म होना है

32. अनिश्चय

कभी आलोचक, कभी कवि,
कभी लेखक, कभी वक्ता ;
कभी उपन्यासकार, कभी नाटकसृष्टा—
कभी कथालेखक, कभी-मार्गदृष्टा,
बदलती हवा के साथ बदलता ही गया,
हर मोड़ पर मुड़ता ही गया,
फलत :—
आज मैं पंसारी हूँ, जौहरी नहीं।

33. व्यक्तित्व

निजी आस्था, निजी मस्ती,
निजी चिन्तन, निजी संवेगों की आत्यन्तिकता,
समझौते और समर्पण का
पूर्ण बहिष्कार ;
पर, सदा ग्रहणशील मस्तिष्क
और हृदय को विश्वसनीय और
सत्य जो लगे उसे स्वीकारने की पूरी क्षमता
सच्चे व्यक्तित्त्व का लक्षण है ।

34. महानता

व्यक्ति की महानता उसके मस्तिष्क में नहीं ;
उसकी भौतिक उपलब्धियों में नहीं ;
उसकी अगाध विद्वत्ता में नहीं ;
उसका वज्रांग, उसका उच्च कुल
उसका विशाल साम्राज्य—
ये सब महानता के अवरोधक तत्त्व हैं ।
महानता स्वामी में नहीं
सेवक में होती है ;

महानता का आसन सिंहासन नहीं, धरती होती है।
महानता स्वयं की नहीं
दूसरों की चिन्ता करती है;
महानता उस हृदय में होती है
जो सदा दूसरों के लिए धड़कता है।

35. सच्चा जीवन

शरीर अशक्त होकर या सशक्त होकर
कभी अकर्मण्य भी रहे तो
किसी प्रकार क्षम्य भी है;
पर बुद्धि और हृदय का सो जाना
तो बस सीधा मरण है।
निरन्तर मस्तिष्क को नये चिन्तन
से उज्ज्वल रखना सच्चा जीवन है।

36. एकनिष्ठता

एक निश्चय, एक लक्ष्य,
एक अविराम साधना एक जीवन के लिए पर्याप्त है
यह जीवन्मुक्ति का दूसरा नाम है।
बहुधन्धिता से बत्तर दूसरा
मरण नहीं हो सकता।

37. गाली

शुद्ध हृदय मे दी हुई गाली
प्यार की निराली अभिव्यक्ति है,
यह सम्बन्धों का संयोजक तत्त्व है ।
इसमें भीतरी माधुर्य है, शक्ति है ।

38. कायरमरण

समस्या या पीड़ा मे घबराकर,
आत्महत्या करना कायर मरण है,
ऐसे मरण में शान्ति की तलाश करना
स्वयं का अपहरण है ;
अभिमन्यु जी सका या न जी सका
यह बात और है, पर
मौत ऐसी मरा कि बन गया उदाहरण है ।

39. अपूर्ण मानव

हम अपूर्ण मानव हैं, हममे भूल होती है ;
पर उसे सुधारने मे वही फूल होती है ;
उसी को दबा देने से, वही शूल होती है,

फिर ज़िन्दगी के सब्ज बाग में—
बस धूल ही धूल होती है।

40. आवरण

मानव कितना यत्नशील रहता है,
निज नश्वर तन की रक्षा में ;
प्रतिपल प्रतिक्षण जूझ रहा
जीने की भौतिक कक्षा में।
आवरणों की अनगिनत भित्तियाँ
आत्मा पर चढ़ती जाती हैं
और देह की मोटाई की
पर्तें बढ़ती जाती हैं।

41. अन्धत्त्व

ज्योतिहीनता नेत्रों की
अन्धत्त्व नहीं है भाई ;
अन्धा वह है जो अपने पर्वत से दोषों पर-
कालिख पर—

चन्दन का लेप किया करता है।
देखकर, समझकर भी अनदेखेपन,
अनसमझेपन का ढोंग किया करता है।

42. सह लेते हैं

सफेद कपड़े पर लगा छोटा-सा धब्बा भी
हमारी आँख देख लेती है।
और हम उस कपड़े को गन्दा कह देते हैं।
पर, काले कपड़े पर लगे सैकड़ों धब्बों को
हमारी नज़र देख नहीं पाती है
अतः हम सह लेते हैं।
क्या करें! अन्तर्दृष्टि की कमी है।

43. जय-पराजय

भौतिक जय-पराजय
महत्त्वहीन है, नगण्य है।
आत्मिक, सांकल्पिक पराजय ही
सबसे बड़ी, कभी न मरनेवाली पराजय है।

धन-धान्य, दास-दासी और यश आदि पाकर भी, गुलाम मनोवृत्ति का व्यक्ति पराजित ही है।

और दूसरी ओर—भौतिक स्तर पर सब कुछ खोकर भी—

यदि मानसिक और बौद्धिक स्तर पर आदमी अडिग है तो वह जयी है– क्योंकि

विचारों की हार सबसे बड़ी हार होती है और, विचारों की जीत सबसे बड़ी जीत होती है।

44. होली

[1]

आज सबको प्यार दो, आज सबसे प्यार लो।

अब सभ्यता की दासता
स्वीकार मानव कर चुका है;
और संस्कृति की चिता
तैयार मानव कर चुका है।
इतिहास से वह कट चुका है
पूर्वजों से बट चुका है;
कल की उसे चिन्ता नहीं
रट आज की वह रट चुका है।
आवरण पर आवरण ही
आज बढ़ते जा रहे हैं;
आत्मा के वक्ष पर

ये दैत्य चढ़ते जा रहे हैं।
मरण से भयभीत मानव,
तेज़ जीवन जी रहा है;
फिर सबेरा हो न हो,
बस, भोग का विष पी रहा है।
तो, डूबते इन्सान को प्यार की पतवार दो।
राधिका का राग दो, कृष्ण की मनुहार दो
आज सबको प्यार दो.

[2]

शंका, अनिश्चितता, घुटन से
आज मानव गल चुका है;
व्यस्तता, अलगाव, अवसरवादिता,
से आज मानव जल चुका है।
टिमटिमाता दीप है
पर, चाँद को दहला रहा है,
[सूर्य को झुठला रहा है]
खुद है मरण की क़ब्र में
पर गीत रस के गा रहा है।
बुद्धिवादी बुद्धि के औ' कर्मवादी कर्म के
'शार्टकट' अपना रहे हैं;

ईश की हत्या निरन्तर कर रहे,
पर, मन्दिर बनाते जा रहे हैं।
ज्ञान मे औ' ज्ञानियों मे
है न कोई वास्ता ;
फिर भी फैशन के लिए —
हैं कर रहे—
व्याख्यान का ये नाश्ता।
बुद्धि से बौने मनुज को, प्यार का संसार दो।
हृदय की संकीर्णता को, प्यार का विस्तार दो।
आज सबको प्यार दो.

[3]

होली दहन का पर्व यह
मानव विजय का पर्व है ;
पूर्णिमा की रात यह,
हर क्षण किरण का पर्व है।
आज सब भूले हुए हैं
ज़िन्दगी की दूरियाँ ;
आज तो सब सो गयी हैं
उम्र की मज़बूरियाँ।
आज सतरंगी जवानी,
हर डगर पर झूमती ;

आज मस्ती में हवा
झुक हर कली को चूमती
आज की मनमानियों पर
रोक लग सकती नहीं ;
आज की नादानियों पर
टोक लग सकती नहीं ।
बस, चौखट पै आये प्यार को, खोल अपना द्वार दो ।
तन दो, नयन दो प्राण दो, और सब कुछ वार दो ।
उम्र भर की क्षुद्रता को, आज तो झटकार दो ।
आज सबको प्यार दो........

[4]

यह जगत एक मंच है
औ' हम सभी बस पात्र हैं ;
प्रकृति के निर्मम करों में
हम खिलौने मात्र हैं ।
हम सभी की उम्र सीमित है,
इसलिए हँस खेल लें, मिल लें यहाँ ;
भूल जाएँ दूरियों को खामियों को
और झुक लें, झूम लें, खिल लें यहाँ ।
ऐटमों के वंशधर हम,
हर क्षण अनिश्चित जी रहे ;

डालडा और पाउडर का
'अमृत' रो रो पी रहे।
अर्थ, सुख, अधिकार सब कुछ,
आज डगमग हो रहा है;
आज सबसे अधिक मानव
निज मरण को ढो रहा है।
मृत्यु मे झुलसे मनुज को, प्यार की मधु धार दो।
तुम मुझे आधार दो, तुम मेरा आधार लो।
मैं तुम्हें स्वीकार लूँ, तुम मुझे स्वीकार लो।
आज सबको प्यार दो........

45. हे महावीर

[1]

हे देशजयी, हे कालजयी, हे युगनायक, हे महावीर!
रवि से प्राची ज्यों धन्य हुई, सागर रत्नाकर कहलाया।
हे धन्य हिमालय गंगा से, तुमसे मातृत्व गया गाया॥
त्रैलोक्य हर्ष से नर्तित थे, सुन जन्म तुम्हारा वर्धमान।
काले युग का क्षय सहज हुआ, थी धरा पा गयी नव विहान॥
पशुओं को पशुपति मिला और नर सृष्टि ने नारायण पाया।
सदियों के बाद अंधेरे पर, चिर प्रकाश का युग आया॥

निज उत्थान-पतन का अधिकारी, मानव खुद ही बस होता है
है भाग्य विधाता ईश नहीं, मानव पाता जो बोता है ॥
हे! मानवसत्ता के उद्बोधक! हे क्रान्तिजयी हे शान्तधीर।
हे देशजयी.......

[2]

धर्म, सहजता, शुचिता, जीवदया, निश्छलता का जीवन है।
यहाँ त्याग की, संयम की महिमा है, यहाँ अभय का
खिला हुआ नन्दन है
हम जिएँ, दूसरों को भी जीने दें, बस कहीं नहीं क्रन्दन हो।
हर हृदय प्रेम से आपूरित, नित मानवता का वन्दन हो ॥
धर्म, जाति के कुल के, विद्या के घेरे में बन्द न हो।
सब संयम से अनुशासित हों, कोई अन्यायी स्वच्छन्द न हो ॥
हर दिल की बहती सरिता से, सागर का वैभव बढ़ता हो
चल चल के मिलें, मिल मिल के चलें, भावों का ज्वार उमड़ता हो ॥
चिर उज्ज्वल धर्म दिया भू को, तुमने जन जन की हरी पी
हे देशजयी........

[3]

हे वीर! तुम्हारे आदर्शों का भारत बदल चुका है कब का!
यह सत्य, अहिंसा, सदाचार नीलाम कर चुका कब का!
युद्धों का उन्माद विश्व के रग रग में छाया है।

धरती से अम्बर तक मानव ने शस्त्रों का जाल बिछाया है।
हर देश, देश का दुश्मन है, हर खून खून का प्यासा है।
लग रही होड़ भौतिक सुख की, चन्दा भी चीरा जाता है॥
नैतिक मूल्यों की चिता बनी, अब धांय धांयकर जलती है।
चोर बजारी, दुराचार की, घर घर आग सुलगती है॥
तेरे भारत को कैंसर है, जल रही धरा जल रहा नीर।
(तेरे स्वप्नों का विश्व आज, तेरे रग रग को रहा चीर)

हे देशजयी......

[4]

आज चन्दना, सीता, दमयन्ती की इज्जत खोली जाती है।
आज विश्व के चौराहों पर बोली इनकी बोली जाती है॥
नेताओं का पतन हो चुका, अभिनेता मार्ग दिखाते हैं।
हैं इन्हें भोग बस भोग भोग, लाखों भूखे मर जाते हैं॥
आत्मा अजरामर होती है, यह बात पुरानी पड़ गयी आज।
आत्मा की ही समाधि पर आज बन रहा नव समाज॥
आज अहिंसा धर्म विश्व को गाली-सी लगती है।
सुन वीर तुम्हारी बात, हृदय में गोली-सी दगती है॥
सुख की आशा में आज मनुज आ गया मृत्यु के महातीर।

हे देशजयी......

46. एक प्रश्न : एक उत्तर

मैं क्या करूँ?
जहाँ हूँ वहीं खड़ा रहूँ?
पीछे लौट जाऊँ?
या फिर बेफिक्र आगे बढ़ूँ?
लोग तो न जाने क्या क्या सलाहें देते हैं।
मेरी अन्तरात्मा कहती है.... .. ..
निष्ठा से अपना काम करता रहूँ,
निडरता से जीता रहूँ; जो भी होगा ठीक होगा।

47. कुण्ठाग्रस्त मानव

आज मानव में वर्तमान वादिता चरम पर है....
खास तौर पर युवा पीढ़ी में।
यह पीढ़ी अतीत को पूर्णतया त्याग चुकी है
इसका वर्तमान खोखला है और भविष्यत्
पर न इसका भरोसा है, न ही यह
उसके प्रति आशावान् है।
किसी देश के लिए यह कितना घातक लक्षण है।

48. संस्कृति

संस्कृति एक त्रिकालिक गतिशील संस्था है।
वह कल थी, आज है और कल भी रहेगी।
वह मानव जीवन के कर्ममय स्फूर्त क्षणों का दर्पण है

49. राष्ट्रकवि दिनकर की पुण्यस्मृति में

[1]

ओ चिर प्रकाश के संस्रष्टा, ओ दिनकर, प्रलयंकर, क्षेमंकर!
बिल्कुल विश्वास नहीं होता, कि तुम यश:प्राण हो गये,
जनवाणी में प्राणों में बसकर, सहसा अन्तर्धान हो गये,
माँ सरस्वती की कुक्षि सदा को रिक्त हो गयी,
अब कुरुक्षेत्र औ' रश्मिरथी की सम्प्रेरक हुँकार सो गयी॥
ओ रक्त क्रान्ति औ' बलिदानों की परम्परा के ध्रुव गायक,
ओ व्यास, चन्द, भूषण की थाथी के चिर सन्नायक!
ओ संघर्षों की ज्वलज्ज्वाल, ओ गरलंकर, ओ अनलंकर!
ओ चिर प्रकाश के संस्रष्टा....

[2]

अगणित भौतिक पद सम्मानों की माला ने अनुसरण किया,
लौकिक आभरण धन्य हो गये, स्वयमेव तुम्हारा वरण किया।

चिर चर्चित पौराणिक अर्थों को, तुमने जीवित सन्दर्भ दिया,
क्षमा, वीरता और तपस् को तुमने सच्चा अर्थ दिया।
आज देश का बच्चा बच्चा, गाता अनल, गरल हो,
"क्षमा शोभती उस भुजंग को, जिसके कंठ गरल हो।"
ओ अजरामर, ओ विश्वप्राण, ओ विश्व चेतना के गणधर।
ओ चिर प्रकाश के संस्रष्टा.

[3]

सारस्वत वर्चस्व तुम्हारा देशकाल के बन्धन काट चुका है;
संस्कृति का उद्घोष दिगन्ती, मानव-पशुता को पाट चुका है;
पुण्यस्मृति में आज तुम्हारी, रवि का मस्तक झुका झुका है,
आज चन्द्रमा का प्रकाश भी, लगता बुझा बुझा है।
आज पवन में और गगन में, बड़ी दीनता सी छायी है,
गंगा की निर्मल धारा में, सहज क्षीणता सी आयी है।
जो सदियों के तप से पाया था, अब सदियों तक रोना है खोकर
ओ चिर प्रकाश के संसृष्टा......

50. छात्रों की विदाई पर

प्रकृति की भाँति मेरे जीवन में भी
प्रतिवर्ष पतझर आता है।

वह सब कुछ जो पूरे वर्ष बहुत भाता है
बस आज के दिन झर जाता है ।
यह ठीक है कि पुराने को झरना ही चाहिए ।
और नये को उसकी जगह सँवरना ही चाहिए ।
पर, स्थिर हुए रागों को, भुलाना कितना कठिन है!
स्मृतियों को किसी और भूले में झुलाना
कितना कठिन है!
कैसा दुर्दिन है!
एक माली ने एक बगिया में कुछ बिरवे लगाये थे ।
हर बिरवे में उसने कुछ स्वप्न सजाये थे ।
हर बिरवे ने भी अपनी पूरी महक मे बगिया भर दी ॥
और माली की आत्मा सदा के लिए तर कर दी ।
हर फूल की अपनी अपनी विशेषता है, गुण है ।
पर कुछ के अपने विशेष लक्षण हैं ।
सृष्टि में भी कुछ विलक्षण हैं ।
तो कुछ सुलक्षण हैं ॥
दशरथ के पुत्रों में राम भी हैं, लक्ष्मण भी हैं
कुछ भी हो, इन फूलों से एक नव युग जन्मा है ।
संगठन, ताज़गी, महक और त्याग इनके सह जन्मा है ।
ये जहाँ भी रहें नाम और सुख पाते रहें ।
जीवन की हर डाल पर हँसमुख रहें, गदराते रहें ।

तुम्हारा कोई कण्व

तुम्हारा कोई जनक

तुम्हारा कोई दशरथ

हरक्षण तुम्हें याद करता रहेगा ।

तुम्हारे भविष्यत् की उज्ज्वल किरन को

सदा तुममें भरता रहेगा ।

न-शासन के कुछ विचारणीय प्रसंग

लेखक
पद्मचन्द्र शास्त्री

प्रकाशक
वा मन्दिर, २१, दरियागंज, नई-दिल्ली-२

प्रकाशक :
वीर सेवा मन्दिर सोसायटी (रजि०)
२१, दरियागंज, नई दिल्ली-२

□

मूल्य : मनन चिंतन
दो रुपये

प्रथमावृत्ति : १०००
वीर निर्वाण संवत् : २५०८
वि० सं० २०३८
सन् १९८२ ई०

□

मुद्रक :
गीता प्रिंटिंग एजेंसी,
सीलमपुर, द्वारा विंध्यवासिनी
पैकेजिंग, न्यू सीलमपुर, दिल्ली।

अनुक्रमणिका

क्रम		पृष्ठ
१.	प्रकाशकीय	घ
२.	प्राक्कथन	च
३.	अनादि मूलमंत्रोऽयम्	१
४.	भगवान पार्श्व के पंचमहाव्रत	६
५.	पर्यूषण और दशलक्षण पर्व	२१
६.	अपदेशसत्तमज्झं	२७
७.	आचार्य कुन्दकुन्द की प्राकृत	३१
८.	आत्मा का असंख्यातप्रदेशत्व	३६
९.	स्वस्तिक रहस्य	४६
१०.	परिशिष्ट	५५

'मेरा अपना कुछ नहीं, सब आचारज बैन।
लोग भरम मो पर करैं, यातैं नीचे नैन॥

गुरु-वाणी संचय करन, प्रकट करन जिन बैन।
पुण्य कार्य या जगत में, जानैं सब ही जैन॥

मन्द-बुद्धि मैं भक्ति-युत, आग्रह मम कछु नाँहि।
तथ्य-अतथ्य विचारिकैं, सुधी धरो मन माँहि॥"

पद्मचन्द्र शास्त्री
वीर सेवा मन्दिर, दिल्ली